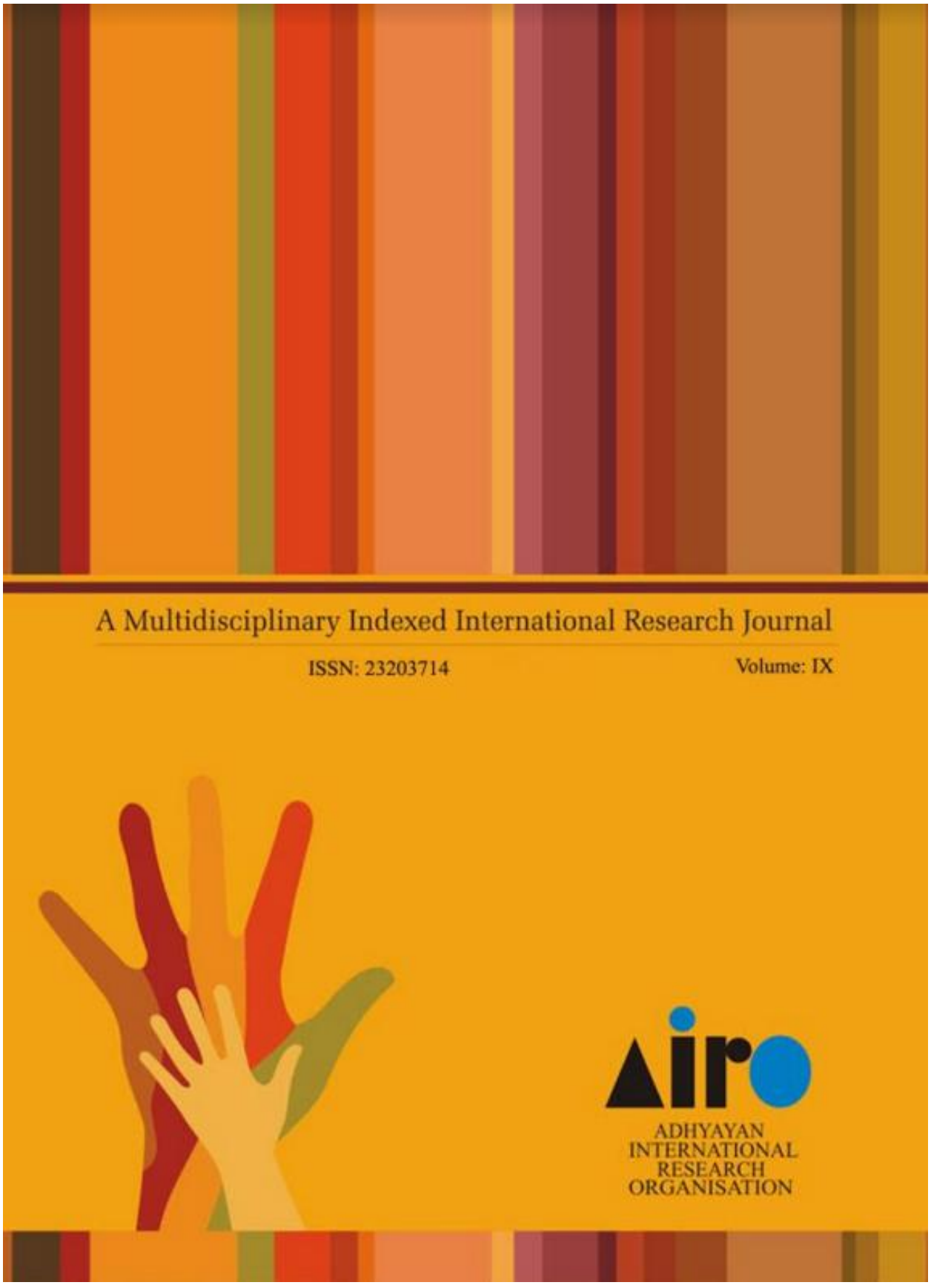
A Multidisciplinary Indexed International Research Journal
ISSN: 23203714
Volume: IX
Airo
ADHYAYAN
INTERNATIONAL
RESEARCH
ORGANISATION

Airo International Research Journal
Volume IX, ISSN: 2320-3714

January, 2017

योग का अंतिम लक्ष्य–पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति

डॉ0 अखिल सिंह

सहायक महाप्रबंधक

विक्रांत सैफ गार्ड इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नौएडा

Declaration of Author: I hereby declare that the content of this research paper has been truly made by me including the title of the research paper/research article, and no serial sequence of any sentence has been copied through internet or any other source except references or some unavoidable essential or technical terms. In case of finding any patent or copy right content of any source or other author in my paper/article, I shall always be responsible for further clarification or any legal issues. For sole right content of different author or different source, which was unintentionally or intentionally used in this research paper shall immediately be removed from this journal and I shall be accountable for any further legal issues, and there will be no responsibility of Journal in any matter. If anyone has some issue related to the content of this research paper's copied or plagiarism content he/she may contact on my above mentioned email ID.

भारतीय शास्त्रों में जीवन के परम लक्ष्यों को पुरुषार्थ कहा जाता है। पुरुषार्थ शब्द का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यह दो शब्दों से मिलकर बना है। पुरुष + अर्थ। यहां पुरुष शब्द से अभिप्राय 'विवेकशील प्राणी' एवं अर्थ से अभिप्राय 'लक्ष्य' से है। साधारण शब्दों में कह सकते हैं कि विवेकशील पुरुष के लक्ष्य को ही पुरुषार्थ कहा जाता है।

पुरुषार्थ देशकाल की स्थिति की अनुरूपता तथा साधन साध्य की अनुकूलता पर आधारित है। इस अनुष्ठान में सहभागी पुरुष ज्ञाता, कर्ता एवं भोक्ता तीन पक्षों से युक्त होता है। ज्ञाता जो कर्ता था, कर्त्तव्य के बोध वाला विवेकी व्यक्ति है। कर्त्ता का तात्पर्य देशकाल स्थिति एवं नियति के साथ स्वतः इच्छा सम्पन्न व्यक्ति से है। भोक्ता का तात्पर्य अपने कर्म से जनित कर्म का दूसरों के साथ सहभागी होना है।

पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष स्वीकार किए गए हैं। जहां विश्व में कुछ संस्कृतियाँ अर्थ को ही मानव–जीवन का लक्ष्य मानती है, तो कुछ काम पुरुषार्थ को केवल धर्म को भी कुछ जातियां जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानती हैं। लेकिन भारतीय मनीषा इन सबसे अलग धर्म, अर्थ, कार्य तथा मोक्ष चारों को परम पुरुषार्थ मानती हैं।[1] मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य है, जिस कारण से इसे पूर्ण आनन्द, शान्ति और स्वतन्त्रता की स्थिति भी कहा जाता है। मोक्ष को ही भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य माना गया है।

पुरुषार्थ चतुष्टय में काम को प्रेयस तथा मोक्ष को निःश्रेयम कहा गया है। धर्म काम का नियामक है तथा अर्थ व काम मोक्ष का साधन है। आत्मतत्व को नित्य, कूटस्थ व पराकाष्ठा रूप मानते हैं, अतः परम पुरुषार्थ मोक्ष ही है। मोक्ष जीवन का अंत नहीं है अपितु पूर्णता है जो जीवन के वरण व उन्नयन का कारण है।

पुरुषार्थ चतुष्टय में लौकिक और पारलौकिक, दोनों प्रकार के लक्ष्यों के बीच समन्वय देखा जाता है। जहां एक ओर अर्थ (धन–संचय) और काम (इन्द्रिय–सुख भोग) का विषय सांसारिक है और धर्म और मोक्ष का संदर्भ पारलौकिक है। अर्थ–काम की प्राप्ति के लक्ष्य को ऐहिक कहा जायेगा, जिसमें जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टि पुष्ट होती है, तथा धर्म–मोक्ष के द्वारा विश्व के प्रति नकारात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है। अतः धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष के पुरुषार्थ में एक संतुलित एवं समन्वयात्मक परम लक्ष्य का ही बोध होता है।[2]

मनुष्य के शरीर के तीन प्रमुख अंग हैं– शरीर, मन और आत्मा। इनमें शरीर एवं मन अनित्य तथा आत्मा को नित्य और शाश्वत् माना जाता है। संसार में प्रत्येक मनुष्य सुख प्राप्त करने की अभिलाषा में निरंतर प्रयासरत् रहता है। यह सुख दो प्रकार का है – भौतिक सुख एवं आत्मिक सुख। भारतीय दार्शनिक भौतिक सुख को प्रेयस् और आत्मिक सुख को श्रेयस् कहते हैं। मानव जीवन का लक्ष्य प्रेयस, से श्रेयस् की अनुभूति है।

पुरुषार्थ चतुष्टय को लोक–परलोक, भोग–योग, प्रवृत्ति–निवृत्ति एवं इहलौकिक–पारलौकिक समस्त मानवीय चेष्टाओं का समन्वित और संतुलित रूप कहा जाता है। यही जीवन–यापन का मध्यम मार्ग है, जोकि

भारतीय संस्कृति का आधार है। इस प्रकार कह सकते हैं कि पुरुषार्थ सिद्धान्त भारतीय दर्शन का एक ऐसा जीवन दर्शन है जिसमें भोग और योग, लोक और परलोक, यथार्थ और आदर्श तथा काम और निष्काम का अनुपम समावेश है।[3]

भारत के संविधान की प्रस्तावना का आधार भी पुरुषार्थ को माना गया है।

मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि, यदि मानव की प्रकृत्ति के अनुरूप पुरुषार्थ चतुष्टय को क्रम से लगाया जाए, तो वह क्रम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्थान पर अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष होगा। सामान्यतः इनमें साधन–साध्य भाव भी माना जाता है। काम की तृप्ति के लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है, अतः साधन है और काम साध्य है। इसी तरह से धर्म साधन है और मोक्ष साध्य। लेकिन अर्थ और काम पुरुषार्थ पर धर्म का नियंत्रण होना चाहिए, इस दृष्टिकोण से इन चार पुरुषार्थों में धर्म प्रथम आता है और शेष बाद में। इस तरह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म को पहला पुरुषार्थ कहना चाहिए।[4]

धर्मः–

पुरुषार्थ चतुष्टय के अंतर्गत धर्म से अभिप्राय किसी जाति या सम्प्रदाय विशेष की मान्यता से नहीं है। यहां धर्म से अभिप्राय केवल और केवल तात्त्विक धर्म से ही है, जोकि मानव के सम्बन्ध में है तथा समाज में विकसित हुआ है। यह जीव व जगत् के अस्तित्व का कारण कहा गया है। यही निःश्रेयस का आधार और सद्गुण रूप भी है।

ऋग्वेद में सम्पूर्ण सृष्टि को चलाने के लिए एक सार्वभौम नियम की व्यवस्था बताई गई है, जिसे 'ऋत्' कहा जाता है। इसी 'ऋत्' को आगे चलकर सत्य और धर्म कहा जाने लगा।[5] अतः धर्म शब्द का प्रयोग शाश्वत् नियम के अर्थ में, धारण करने वाली शक्ति के रूप में एवं उसके संरक्षणार्थ कर्त्तव्य बोध और कर्त्तव्य परायणता के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि जिसको व्यवहार में धारण किया जाए वही धर्म है।

सामान्य व्यवहार में धर्म शब्द का प्रयोग वर्ण–धर्म, आश्रम–धर्म, सामान्य–धर्म, स्व–धर्म, कुल–धर्म, राष्ट्र–धर्म आदि रूपों में भी होता है। पुरुषार्थ के सिद्धान्तनुसार धर्म शब्द का प्रयोग व्यवहार–धर्म के अर्थ में हुआ है, जोकि मोक्ष–धर्म से भिन्न है। पुरुषार्थ धर्म ही कर्त्तव्य धर्म है और यही धर्म मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक उन्नति का आधार है। कर्त्तव्य कर्मों के पालन करने के कारण से ही मनुष्य को इस संसार एवं परलोक दोनों में सुख की प्राप्ति होती है।

धर्म के ज्ञान और धर्म के पालन करने में अंतर है। मानव के द्वारा अपने आचरण में उतारा गया धर्म ही पुरुषार्थ धर्म है। धर्म को केवल जानने मात्र से ही कल्याण नहीं होता, अपितु धर्म का पालन करने से ही कल्याण होता है। भारतीय दर्शन का शुरू से ही मत है कि मानव की मृत्यु के उपरांत उसके द्वारा अर्जित किए गए सभी सुख–ऐश्वर्य यही नष्ट हो जाते हैं और केवल उसके द्वारा किए गए 'संचित कर्म' ही धर्म रूप में उसके साथ परलोक को जाते हैं।

मनुस्मृति के अनुसार परलोक में हमारी सहायता के लिए इस संसार से माता–पिता, पुत्र, पत्नी, जाति–बिरादरी का कोई भी सहायता के लिए नहीं रहता केवल धर्म ही जीव के साथ संचित कर्मों के रूप में रहता है।[6] उन्होंने धर्म को 'धारणात धर्मः' कह कर परिभाषित किया है तथा बताया है कि 'धर्म' के दश लक्षण हैः–

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[7]

अर्थः– पुरुषार्थ चतुष्टय में द्वितीय पुरूषार्थ अर्थ है। अर्थ पर केवल मानव का भौतिक सुख ही निर्भर नहीं करता, अपितु, उसका जीवन भी निर्भर करता है। अर्थ के अभाव में जीवन कष्टकारी हो जाता है। इसलिए अर्थ के बिना सुख की कामना नहीं की जा सकती। काम की प्राप्ति के लिए भी अर्थ की आवश्यकता होती है। इसलिए पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तगर्त काम की अपेक्षा अर्थ को अधिक महत्वपूर्ण कहा गया है।

आचार्य भतृहरि ने अर्थ की महत्ता को बतलाते हुए कहा है कि धनी, व्यक्ति ही कुलीन, ज्ञानी, पंड़ित, गुणी, वक्ता तथा सुन्दर माना जाता

है। इसलिए अर्थ जैसी महत्वपूर्ण वस्तु की प्राप्ति को जीवन का ध्येय माना गया है।[8]

पुरुषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत अर्थ को एक पुरुषार्थ मानने के बावजूद भी धन के अधिक संचय करने की अनुमति नहीं दी गयी है। इससे आशय यह है कि अनैतिक कार्यों के द्वारा यदि कोई व्यक्ति अपने सामर्थ्य से अधिक धन का संचय करता है तो वह व्यक्ति पाप का हिस्सेदार होगा। इसलिए अर्थ पुरुषार्थ को धन कमाने मात्र का जरिया न समझकर काम और धर्म का साधन के रूप में ही समझना चाहिए।

कौटिल्य के समय में अर्थ, भूमि और राज्य से सम्बन्धित था, क्योंकि राज्य के द्वारा ही अर्थ का सही तरीके से प्रबंधन हो सकता था। पूर्व से लेकर वर्तमान समय तक समाज में संघर्ष का कारण भी यह अर्थ ही है, क्योंकि जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों यथा सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक सभी क्षेत्रों में अर्थ महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे केवल धर्म का आधार देकर अनुशासित समाज धर्म की प्रधानता को नष्ट कर सकता है।

शुक्रनीति में अर्थ की महत्ता को बताते हुए कहा कि निर्धन व्यक्ति चाहे कितना भी गुणवान् क्यों न हो, तो भी उसके स्त्री, पुरुष और परिवार वाले, उसका कुछ भी आदर नहीं किया करते, उसका परित्याग तक कर देते हैं। इस जगत् के व्यवहार के लिए अर्थ का बड़ा महत्व है। इसीलिए मनुष्य को स्वतः अर्थ का उपार्जन अवश्य करना चाहिए।[9]

धन का उपार्जन और व्यय धर्म के अनुसार ही करना चाहिए। गलत रास्तों से कमाए गए अशुद्ध धन से इस लोक या परलोक में, कहीं पर भी उत्तम और स्थायी सुख की कभी प्राप्ति नहीं हो सकती। शास्त्रों में धन की तीन गतियां बतायी गयी हैं– दान, भोग और नाश। दान देना ही धन की प्रथम गति है, जिस धन का प्रयोग दान–पुण्य के लिए होता है, वही धन सही मायने में अर्थ पुरुषार्थ है। इसके बाद भोग में प्रयुक्त होने वाले धन को पुरुषार्थ कहा गया है। क्योंकि अर्थ का महत्व व्यक्ति की लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति में है। यदि धन को दान में खर्च नहीं किया जाए, और न अपने जीवन यापन पर पर्याप्त ढ़ंग से खर्च किया जाये मात्र उसका संचय करके रखा जाए तो धन का नाश हो जाता है।

कामः– काम, पुरुषार्थ चतुष्टय में तीसरा स्थान रखता है। वात्स्यान ने काम शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है– विस्तृत अर्थ एवं संकुचित अर्थ। विस्तृत अर्थ के रूप में काम शब्द का प्रयोग इन्द्रिय–सुख के लिए होता है। जैसे कि मनोहर दृश्य, माधुर्यमय संगीत आदि के अनुभव को काम कहा जाता है। संकुचित अर्थ में काम का सम्बन्ध सभी इन्द्रियों से उत्पन्न सुख से ना होकर केवल यौन–सुख से है।

भारतीय शास्त्रों में कहीं भी विवाह को अनैतिक नहीं बताया गया है अपितु विवाह को आध्यात्मिक उन्नति का साधन कहा है। लेकिन यह तभी तक है जब तक कि व्यक्ति इसे इन्द्रिय भोग करने तक सीमित न रखें।

शारीरिक काम को धर्म के अनुसार नियमित करना आवश्यक है क्योंकि वासना की स्थिति में व्यक्ति में दुराचार की प्रवृत्ति विकसित होती है जो पतन का कारण तथा समाज में अव्यवस्था का कारण है। कला व भक्ति के रूप में भी इसका विकास हुआ है। काम को निष्कामरूप में परिवर्तित करना मानव के लिए कठिन कार्य है। पारमार्थिक स्थितियों में सभी कामनाओं की पूर्णता हो जाती है।

सभी इच्छाओं, कल्पना का आधार काम ही है। सृजनात्मक स्वभावरूप होने के कारण तीनों पुरुषार्थ की प्रवृत्ति का आधार काम ही है। इसका स्वरूप शारीरिक, सांवेगिक व पारमार्थिक है। इस तरह काम का क्षेत्र मनुष्य के अव्यभिचार यौन तृप्ति से लेकर मुमुक्षत्व तक विस्तरित है। सामान्यः स्वरूप की दृष्टि से काम या कामना एक ही है, लेकिन अवस्था भेद से काम के तीन रूप कहे गए हैंः–

(1) शारीरिक काम या यौनाचारः– इन्द्रिय से सम्बन्धित होने के कारण इस काम को स्थूल या लौकिक या शारीरिक काम भी कहा जाता है। इसमें तमोगुण की प्रधानता होती है। अनियंत्रित होने के कारण यह अत्यंत क्षणिक और अन्ततः दुःखदायी होता है।

(2) मानसिक या मनोवैज्ञानिक कामः– इसमें रजोगुण की प्रधानता रहती है। शारीरिक काम को धर्मानुसार मर्यादित ढ़ंग से सम्पादित करना ही इसका उद्देश्य है।

(3) उत्कृष्ट या आध्यात्मिक कामः– काम की इस स्थिति में सत्व गुण की प्रधानता होती है। इसमें मानव अपने शाश्वत स्वरूप को जानना चाहता है। इस स्थिति में व्यक्ति अपने कार्यों में पूर्णतः नैतिक होता है और मोक्ष की कामना करता है।

महाभारत में भी काम शब्द का प्रयोग इच्छा के लिए हुआ है, हर प्रकार की मानवीय इच्छा काम है। यहाँ तक की मोक्ष की इच्छा भी काम है। मोक्ष प्राप्ति के पूर्व मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति की कामना करता है।

अतः काम्य वस्तुओं का भोग मनुष्य को सावधानीपूर्वक, संयम के साथ करना चाहिए। कम से कम शरीर जनित काम का भोग हो और वह भी पुत्रेष्णा और पितृऋण भारती धर्म शास्त्रों के अनुसार निमित्त हो।

मोक्षः– पुरूषार्थ चतुष्टय के अन्तर्गत मोक्ष की अवस्था मानव के चरम उत्कर्ष की अवस्था है। यह पुरुष्ज्ञ की अंतर्निहित सृजनात्मकता की पूर्वता है। मानव के लिए सम्पूर्ण क्लेशों एवं दुःखों से मुक्ति व शांति की अवस्था, आत्म साक्षात्कार व आत्मपूर्णता इसका स्वरूप है। इस अवस्था को पाने के लिए ज्ञान, कर्म व भक्ति माध्यम है।

भारतीय दार्शनिकों ने संसार को दुःखों से परिपूर्ण माना है, इसी दुःख से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य संघर्ष एवं उपाय करता रहता है। जब–जब पृथ्वी पर मनुष्य का पुर्नजन्म होता रहेगा, तब–तब उसे सांसारिक दुःखों का सामना करना ही होगा। अतः इस संसार से छुटकारा तथा दुःख से सदैव–सदैव के लिए मुक्ति को ही मोक्ष कहा जाता है। दूसरे शब्दों में जन्म–मरण के बन्धन से छुटकारे का नाम ही मोक्ष है। धर्म, अर्थ एवं काम आदि लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कराने के लिए सहायक मात्र है। इसके विपरीत मोक्ष स्वयं साध्य है।

सामान्यतः मोक्ष का अर्थ मृत्यु से लिया जाता है। मृत्यु के माध्यम से ही इस भौतिक शरीर का त्याग हो जाता है और इसी के साथ सुख–दुःख की अनुभूति भी समाप्त हो जाती है। साधारण जन इस अवस्था को ही मोक्ष कहते हैं लेकिन दर्शन जगत् में मोक्ष मृत्यु से पूर्णतः भिन्न परम शान्ति और आनन्द की दिव्य अवस्था का नाम है।

वेदान्त दर्शन मोक्ष को जीवन का अन्तिम महत्वपूर्ण परम पुरुषार्थ मानता है। मोक्ष अलौकिक सुख और दिव्य शान्ति की विलक्षण अवस्था है। आचार्य शंकर ने मोक्ष के स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया है–[10]

''इदं तु निरवयं स्वयं ज्योतिः स्वभावं यत्र धर्माधर्मः सहकार्येण कालत्रयं च नोपवर्तते येदतिदयं शरीरत्वं मोक्षख्यम्।''

शंकर द्वारा वर्णित मोक्ष की यह दशा वस्तुतः ब्रह्म का ही वर्ण है। मोक्ष ब्रह्मस्वरूप के अतिरिक्त कुछ नहीं है–

''ब्रह्मवै हि मुक्त्यवस्था।''

मोक्ष की स्थिति में आत्मा से अविद्या की निवृत्ति हो जाती है–

पद्याचार्य के शब्दों में मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति ही मोक्ष है–

''मिथ्यानिवृत्तिमात्रम् मोक्षः।''

वेदान्त दर्शन कहता है कि मोक्ष व्यक्तिसाध्य–प्रक्रिया है और प्रत्येक व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है जोकि ज्ञान के द्वारा सम्भव है।

अतः हम कह सकते हैं कि मोक्ष किसी अप्राप्त स्थिति की प्राप्ति ना होकर के जो आत्मा का मूल स्वरूप है, उसी का अभिज्ञान है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार देह का नाश तो प्रतिक्षण ही होता रहता है और मन सदा बदलता रहता है। देह और मन तो एक संघात मात्र है। और इसी कारण से वे परिवर्तनशीलता के परे नहीं पहुँच सकते। परन्तु स्थूल जड़तत्व के इस क्षणिक आवरण के परे और मन के भी सूक्ष्मतर आवरण के परे, मनुष्य का सच्चा स्वयप–नित्य, मुक्त, सनातन 'आत्मा' अवस्थित है।

उसी आत्मा का अमरत्व, आनन्दस्वरूप, शान्ति और उसी का दिव्यत्व प्रकाशित हो कर अपने अस्तित्व का अनुभव कराती है। वही यथार्थ पुरुष है, जो निर्भय है, अमर है और मुक्त है।[11]

स्वामी विवेकानंद आगे कहते हैं कि मुक्ति तो तभी सम्भव है, जबकि कोई बाहरी शक्ति अपना प्रभाव न डाल सके, कोई परिवर्तन न कर सके। मुक्ति केवल उसी के लिए सम्भव है जो सभी बन्धनों से परे हो, सभी नियमों से परे हो, और कार्य कारण की श्रृंखला से परे हो। यह पुरूष, यह आत्मा, मनुष्य का यह यथार्थ स्वरूप, मुक्त, अव्यय, अविनाशी, सभी बंधनों से परे हैं, और इसलिए वह न तो जन्म लेता और न मरता है।[12] अपितु अमर है।

इसी बात को गीता में श्रीकृष्ण, अर्जुन से इस प्रकार कहते हैं कि यह आत्मा किसी भी काल में न तो जन्म लेता है और न ही यह मृत्यु को प्राप्त होता है। न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।[13]

संदर्भ सूची

1. भारतीय नीति मीमांसा – डॉ0 राजवीर सिंह शेखावत पृष्ठ–118
2. तुलनात्मक धर्म–दर्शन, या0 मसीह पृष्ठ–35
3. भारतीय नीति मीमांसा – डॉ0 राजवीर सिंह शेखावत पृष्ठ–120
4. ऋत च सत्यं च। (ऋग्वेद)
5. नामुत्र हि सहायार्थ ..... गच्छति केवलः। मनुस्मृति
6. मनुस्मृति 6.92
7. धर्म दर्शन की रूप रेखा– डॉ0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा से उद्धृत पृष्ठ– 106
8. शुक्रनीति 3.176
9. भारतीय नीति मीमांसा – डॉ0 राजवीर सिंह शेखावत पृष्ठ–142
10. वेदान्तसारः डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी पृष्ठ– 43–44 से उद्धृत
11. विवेकानंद साहित्य, खण्ड – 9, पृष्ठ–232
12. विवेकानद साहित्य, नवम् खण्ड, पृष्ठ – 232
13. न जायते ..... हन्यमाने शरीरे।। गीता 2.20